

---

विक्टोरिया क्राउन प्रेस, दरियागंज देहली,  
में मुद्रित हुई ।

---

# ❀ समर्पण ❀

—१६३—

परम पूज्य जंगम तीर्थस्वरूप श्रीमद्वि-  
जयानन्द सूरेश्वर (आत्मारामजी) महाराज !  
आपकी ग्रन्थरचना देखनेसे मुझे प्रतीति हुई  
है कि आप एक उद्धारक पुरुष थे ।

यदि आप इन वर्तमानकालमें विद्यमान  
होते तो अवश्य ही इस गरम हुए लोहेका  
घाट धड़े बिना न रहते । आप भावाचार्य हैं,  
थे और रहेंगे । मेरे लिये तो आप नर्वया  
परोक्ष ही रहे हैं तथापि आपकी ग्रन्थरचना  
में मुग्ध होकर मैं यह अपने विचारोंकी माला  
आपके कंकमलोंमें समर्पित करता हूँ ।

सत्य मेघद वेदक

## ❀ धन्यवाद ❀



इस ग्रन्थमें आर्थिक सहाय करनेवाले महानुभावोंकी

शुभ नामावली

१५० जैनसमाजभूषण शेट ज्वालाप्रसादजी	महेन्द्रगढ़
१०० लाला गोकलचन्दजी जौहरी	देहली
१०० लाला हजारीमलजी जौहरी	देहली
५० बापू भैरोदान जेठमलजी	पीकानेर
५० लाला खैरानालालजी यधुमलजी	देहली
५० लाला रतनलालजी पारेख	देहली

इन मज्जनोंको हम इस शुभकार्यके लिये अन्तःक-  
रण पूर्वक धन्यवाद देते हैं ।

## ग्राहकोंकी नामावली

२४ कारी लाला जगन्नाथ दीवानचदजी	गृजगवाना
२५ लाला मणेरुचन्द छोटेंनानजी	गजगवाना
२५ श्रीमधनारणाल लाला मादनचान्दजी व वकाल	ब्राह्मगमजी
२४ लाला रामरखामल जी	बलाचौर
५ श्री हरियामजी पुस्तकालय	लाहावट
४ यति श्रीरामपालजी	देहली





## निवेदन ।

—:ॐॐॐ:—

जिन सज्जनोंको सामाजिक परिस्थितिका परिज्ञान वे समझ सकते हैं कि आज जैनसमाजके धर्मगुरुओंकी जो हुक्मीके साम्राज्यमें उनके माने हुए रूढ़ीधर्मके विपरीत और आजकलके धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले सत्यइतिहासको समाजके सामने रखना कितना खतरनाक और उत्तरदायित्वपूर्ण है । जैनसमाज व्यापारी होनेके कारण अपने धार्मिक साहित्य एवं उसके इतिहाससे सर्वथा अनभिज्ञ है और इस विषयका उसे जिज्ञासा भी पैदा नहीं होती । वह अपने धर्मगुरुओं की वाणीको ही सर्वज्ञकी वाणी मानकर उनकी बातलाई हुई रूढ़ क्रियाओंके करनेमें ही स्वर्गप्राप्तिके स्वप्न देख रहा है । धर्मगुरु समाजकी इस अज्ञानताका भनमाना लाभ उठा रहे हैं । उनमेंसे इनेगिने व्यक्तियोंको छोड़कर धार्मिक इतिहासकी शोध करना तो दूर रहा वे स्वयं अपने पूज्यदेव महावीरकी वास्तविक जीवन घटनाओंसे भी अपरिचित हैं । ऐसी दशामें बन्धनोंसे जंकाड़ी हुई जैनजनता अपने सच्चे इतिहास और सूत्रोंके परिज्ञानसे वंचित रहे तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं ।

मुझे पूर्णविश्वास है कि हमारा धर्मइच्छुक अचोध

समाज जो बह्वर्मी अशास्त्रीय कटिगोत्रोंके धर्म













इतर किसी वीतराग की मूर्तिको विदेशी पोशाक, जाकिट, का-  
सर, यैगरा से सुसज्जितकर उसका खिलौने जितना भी  
सौन्दर्य नष्ट नष्ट करके अपने मानव समाज की सकलता समझ  
रहा है ।... मैं इसे धर्मदम्भ और ठोंग समझता हूँ । अपने इस  
समाज की ऐसी स्थिति देखकर मूर्तिपूजकके तौरपर मुझे भी  
बड़ा दुःख होता है ।" चोट खाये हुये दखावड़ के समान लेख-  
कके चुटीले हृदयसे यह शब्द बस्तावू निकले हैं ।

देवद्रव्यनामक तीसरे स्तम्भमें लिखा है:- "इसके कारण ही  
आज जैनसमाज की प्रगति बकीलों वैरिष्ठों और अशक्तों  
में गड़ी जा रही है और प्रतिदिन समाज क्षयरोगसे पीड़ित  
रोगीके समान विकराल कातकी तरफ खिंचा जा रहा है ।"  
मुझे सिर्फ इसी बातका खेद होता है कि जिन पवित्र निर्भन्वोंने  
लोकहित की दृष्टिसे जिस वादको नियोजित किया था वही  
वाद आज हमें अपना प्राप्त बना रहा है । अहो !! कैसा भीषण  
परिवर्तन !! कैसा पैशाचिक विकार !! और अनेकान्तवादकी  
मुद्राधारवालों का भी यह कैसा भयंकर एकान्तवाद है" !!!  
यह लेखककी दृढ़तन्त्रीकी जंकार है जो अपने समाजकी लुब्ध,  
पीड़ित एवं सञ्चल अवस्था में चितोद्भूत होनेपर गुँड  
निबली है ।

आगमवाद के स्तम्भमें अनेक प्रश्नों की समाख्याचना करने  
हुए लिखा है वनमान समयमें इस प्रकार की अनेक कथा  
एवं द्वाग उपाध्याय ने बँटकर ग्रामों खीनखाव और जगहों  
तिगड़ेमें गहरा विराजमान होकर हमारे कुलगुरु धोनाशंक



नाथाइ की शक्ति सरिता में धोने के लिये बाँटियल है। जाना चाहिये। व्यवहार हुआत व्यापारनिपुण जैनसमाजको भविष्य में आनेवाली आवश्यकियोंके प्रतिबोधका जमीन उगाय करनेना चाहिये। प्रतिष्ठा लाखी। मर्यादा धार्मिक मुकदमेशाही में व्यव करने वाली मन्दिरोंकी दीवारों पर मनों सांता लिपयाने वाली। लाखी मर्यादा व्यवसायमें पहानेवाली लीज असत्यधन मुनिव-शियोंके लिये लुटा देने वाली जैनसमाज "इकपात के हम शेरको बिकार पूर्वक पदे लीज समझे।

सगर जब भी न समझोंगे तो नष्ट जायेंगे दुनियामें ।

सुदृढांगी दास्यां तव भो न हांसी दास्यानेभ्यः ॥

विपरी भाग्य भाविनां वा ऐसी कलुषादयः पुनश्च वदन्ते  
सर्वभाग्य प्राप्त होमा, इत्यत्र विधि कलुषादयः महादयः अन्तरात्  
व दास्येति

६०४८१ धीमल, दिग्गरी ।

संज्ञा प्रमाणः २ दृष्टि विना ननु - एतत्

सुखं भवति सुखं भवति सुखं भवति

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 84

[illegible]

















इस दृष्टि से शास्त्र पौरुषेय हैं, परिवर्तित हैं और अनित्य हैं। इस मान्यता की नींव पर साहित्य विकार के साथ सम्बन्ध रखने वाला मेरा प्रस्तुत प्रश्न युक्त गिना जाय तो इसमें जरा भी अनुचित न होगा। इस प्रश्न को विस्तार पूर्वक समझाने के लिये वर्तमान

---

के उल्लेख और उन्हींकी स्वाध्याय चर्चा, उनके सम समयी जनाली, गोशालक, हस्ती तागस और बुधदेव जैसे प्रखर पादियों के खण्डन मण्डनात्मक संवाद, तथा स्कन्दक, सुधर्मा, जम्बू, गौतम, धेरिक, चेल्लरा, कोरिक, धारली, सिधार्थ, त्रिशला, जयन्ती, मृगावती, सुदर्शन, उदायी, आनन्द, कामदेव, और चूड़ली गिता वगैरह वर्धमान के सम समयी अस्तित्व रखने वाले पुरुरों के नाम निर्देश मिलने से सम्प्रदाय की या उसके संचालकों की अपनी अनादिता के बचाव के लिये ही उपर्युक्त उपाय लेना पड़ा है और उसका उल्लेख सूत्रकृतांग सूत्रकी टीकामें शीलांक सूरिने और व्याख्या प्रज्ञप्तिकी टीकामें अनन्ददेव सूरिने किया भी है—

देखो सूत्र० पृ० ३२६ और भगवती पृ० १६४ अजीमगंज-वाता। यदि इस सम्बन्ध में इतिहास को पूछा जाय तो यह स्पष्टता और सप्रमाण बनता सकता है कि जैसा वान्स्यायन सूत्र अनादि हो सकता है वैसा ही यह प्रवचन भी अनादि का सम्भवित हो सकता है।















पालन किया था। उत्तम सामाजिक  
 नियम, कुछ जाति भेदसे  
 विशेष धर्म, . . . . .  
 से विकृत हो गये थे। इस  
 विशेष अधिकार से . . . . .  
 खराब हो गई थी।  
 इसकी हद तक लोभ  
 धर्मिणानी . . . . .  
 इस धर्म स्विनिही  
 पड़ी थी। जिन  
 आश्रय लिया था,  
 और वन किया  
 सामाजिक . . . . .  
 गया था। . . . .  
 इस . . . . .  
 धर्म . . . . .  
 धर्म . . . . .  
 धर्म . . . . .  
 धर्म . . . . .

धर्म . . . . .

धर्म . . . . .

धर्म . . . . .

धर्म . . . . .



स्वभाव से दयालु न थे और न ही अदयालु थे ।  
 उन्होंने की दशा उदयगत प्रयोग जैसी थी । वे  
 अत्यन्त मिन भापी-वाचंयम थे । उन्होंने अपने  
 जीवन में पथाख्यात मार्गको ही अवलम्बित  
 किया था । आपद्धर्म के नामसे अपनी रक्षाके  
 लिये उन्होंने एक भी छूट न रक्खी थी । शरीर,  
 वचन और मन ये तीनों ही उनके दास बने  
 हुये थे । जैसे एक यंत्रकार यंत्र पर अपनी सत्ता  
 चला सकता है और इच्छानुसार यंत्रको फेर  
 सकता है, उसी तरह श्री वर्धमान ने भी शरीर,  
 वचन और मनसे अपनी इच्छानुसार कार्य  
 लिगा था । यदि शरीर के किसी भागमें  
 खुजली होनी तो वे खुजाने तक भी न थे,  
 शरीर परसे मैल दूर करने की वृत्ति तक भी  
 न रखने थे, शकपत्तया आंखें भी निर्निमेष रखने  
 और सम्पूर्ण नग्नभाव धारण करके उन्होंने  
 लोकलज्जा जीतने का उद्य प्रयत्न सेवन किया  
 था । उम दशामें उत्तीर्ण होनेके लिये वे अर-  
 गणक-अरण्यवासी बने और बहुत लम्बे समय  
 तक उन्होंने कठिन से कठिन ठण्डी, ताप, मूत्र  
 और तृषा आदि कठिनाइयों का सामना किया  
 गा । उन्होंने दीक्षित होते ही लोक प्रवाह के

अनुसरण का परित्याग किया था और अपने अनुयायियों को संदेश सुनाया था कि एो लोगस्सेसणं चरे याने लोकैपणा-लोकवाद का अनुसरण न करना, अर्थात् दुनियां की देखा देखी गतानुगत की लकीर के फकीर न बनना (आचारारूढ मोर्ची वाला पृ० सं० ८३) ।

दीर्घ तपस्वी श्री वर्धमान और बुद्ध दोनों सम-  
 सामयिक महात्मा थे, दोनों निर्वाणवादी महा-  
 पुण्य थे और दोनों का एक ही लक्ष्य था। परन्तु  
 लक्ष्य को सिद्ध करने की दोनों की प्रवृत्ति सर्वथा  
 जुदी जुदी थी। बुद्ध मध्यम मार्गके उपासक  
 और वर्धमान तीव्र मार्गके हिमायती थे। बुद्धने  
 अपनी मार्ग व्यवस्था में जनता के श्रेयको प्रथम  
 स्थान दिया था, वर्धमानने जनताके संस्पर्श तक  
 का भी त्याग किया था। वर्धमान अपनी रहनी  
 और कहनी में एक ही थे, उन्हें इस बातपर  
 आग्रह कदापि न था कि मैं जो कहता हूँ, वही  
 सत्य है और दूसरे का कथन सर्वथा मिथ्या है।  
 वे इस बातको मानते थे कि एक ही लक्ष्य को  
 सिद्ध करने के अनेक साधन हो सकते हैं, इससे  
 साधन भेदमें विरोध की गंध नष्ट नी नहीं

















के बाद लगभग तीनसौ चारसौ वर्ष पीछे-वीर निर्वाण से पांचवीं छठी शताब्दी में आर्य श्री स्कंदिल और वज्रस्वामी की निकटना के समय वैसा ही एक भीषण दुर्भिक्ष इस देशको पार करना पड़ा था । इस विषय का वर्णन करते हुये नंदी चूर्णी लि० पृ० सं० ४ में उल्लेख किया गया है कि चारह वर्षोंय भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने पर अन्नके लिये साधु जुदे जुदे स्थान में विचरते थे, इससे श्रुतका ग्रहण, गुणन और चिन्तन न कर सके, इस कारण वह श्रुत नष्ट भ्रष्ट हो गया । जब पुनः सुभिक्ष हुआ तब मथुरा में श्री स्कंदिलाचार्य प्रमुख संघने साधु समुदाय को एकत्रित करके जो जिसे स्मरण रहा था वह सब कालिक १ श्रुत संगठित किया ।” इस पूर्वोक्त दुर्भिक्ष ने पहले दुर्भिक्षसे बचे हुये श्रुतको विशेष हानि पहुंचाई ; यह उद्धार स्मरसेन देश २ के पाट नगर मथुरा में होने के कारण श्रुतमें स्मरसेनी भाषाका विशेष सम्मिश्रण हुआ और उसमें जुदे जुदे अनेक पाठान्तर ३ भी वृद्धि को प्राप्त हुये ।

१ देखा—कालिक श्रुत के लिए नदीमुख ।

२ देख प्रज्ञापन आर्य देश विचार

३ विशेष पाठ भेदों में उत्पन्न में रहे हुये धीअभयदेव







जैन दर्शन का यह सिद्धान्त तत्त्ववाद एवं आचारवाद में सर्व व्यापी होनेके कारण अपना अपरनाम, अनेकान्त दर्शन, भी धारण करता है। उसका यह सिद्धान्त प्रकृति के नियमानुसार है। प्रकृति की ऐसी रचना है कि संयोग वश वज्र जैसा सघन या कठिन और गुरुतम पदार्थ भी नरम प्रवाही जैसा हो जाय और नरम प्रवाही पदार्थ वज्रके समान घन एवं कठोर बन जाता है। यह बात व्यवहारिक है, अनुभव प्रतीत है और प्रयोगशाला देखने वाले का प्रत्यक्ष सिद्ध है, तब फिर श्री वर्धमान के समय के उपदेश, आचार, विचार, या तत्त्ववाद परिवर्तित हों तो इसमें कोई नवीनता नहीं। वर्तमान समय में श्री वर्धमान के जैसे

इसलोक परिस्थिति में यह स्पष्ट मान्य हो सकता है कि गणवर्ग के रचे हुए गुणों या अर्गों पर कैसे कैसे युग बीतते हैं। त्रिम साहित्य पर कुरंग की आंखों से ही ऐसा भीतर प्रतीत हो यह साहित्य परंपरागत एक सीला ही चला आये यह बात किसी भी विचारक की बुद्धिमें यथार्थ नहीं अब सचनी। हिन्दु जो अद्भुत साहित्य इस समय विद्यमान है यह दुष्कर्मों के मोक्ष प्रदार्थों के कारण काल, कटी, सखी और हा प्रद्वेष के अमरा अवस्था से अस्मिन् स्थिति में हमारे सामने अस्तित्व धारण करता है।















या उपासक उसी अनिष्ट परिवर्तन को परिपुष्ट करते रहते हैं। शास्त्रोंमें उसका सम्मिश्रण करते हैं इतना ही नहीं अपने पूज्य पुरुष के नामपर चढ़ा कर उसे वज्र लेपके समान दृढ़ करते हैं। जब समाज अनेकानेक वर्षों तक इन अनिष्ट परिवर्तनों का आदि घन जाता है—इनमें रुढ़ हो जाता है तब अनिष्ट परिवर्तन ही उसके धर्म, सिद्धान्त और कर्तव्यका रूप धारण कर लेते हैं, फिर उसके फल स्वरूप में शान्ति की जगह क्लेश, आरोग्य की जगह बीमारी, घनाढ्यता की जगह दरिद्रता, स्वानन्द्य की जगह गुलामी आदि नरकसे भी भयंकर यातनायें सहन करनी पड़ती हैं। आश्चर्य तो इस बातका है कि वर्तमान जैन समाज प्रस्तुत परिस्थिति का अच्छी तरह अनुभव कर रहा है, तथापि जंची आँखें उठा कर वह अपनी दुर्दशा पर दृष्टिपान नहीं करता ? मानों पूर्वोपाजिन का प्रायश्चित्त ही न कर रहा हो, इस तरह मौन मुग्ध होकर सब कुछ सहन कर रहा है।

एक रोगी को रोगदूर करने के लिये किसी एक वैद्यने तमाकू खाना पतलाया। रोगीने



मसलते २ उसकी हथेलियां लाल हो गई इतना ही नहीं किन्तु अब उसके घरकी दीवारें तक भी तमाकू के रंगसे रंगी गई । अन्तमें उस मनुष्यने दुःखित जीवन बिताकर प्राणों का परित्याग किया, परन्तु तमाकू न दुटी । इसी प्रकार किननेएक इष्ट परिवर्तन भी उस तमाकू के समान ही हैं । हरएक मनुष्यको परम सत्य के साथ साख्यभाव प्राप्त करने के लिये प्रारंभ में उन परिवर्तनों का आश्रय लेना पड़ता है—उसका आश्रय लिये बिना हमारा आत्म-विकाश हो नहीं सकता । व्यवहारमें भी अनुभव किया जाता है कि किसी कलामें पारंगत होने के लिये प्रारंभमें कल्पित या बनावटी साधनों का सहवास रखना पड़ता है । हमारे यच्च गुट्टा गुड़ियों आदिके खेलसे गृहव्यवहार और कौटुम्बिक सम्बन्ध सीखते हैं । अद्वितीय भांगोलिक बनने के लिये पृथ्वीके बनावटी गोलके आश्रय लेना पड़ता है । बनावटी नदियों, बनावटी समुद्रों, बनावटी पहाड़ों और बनावटी नगरों की और सावधानता पूर्वक देखना पड़ता है, ऐसे अनेक उदाहरण प्रतीत होते हैं । परन्तु जब हम परिपक्व







सामग्रियों की कलम करनी आवश्यक है। संसार में कितने एक प्रसंग ऐसेभी उपस्थित होते हैं कि जिनमें कुदरत ही हमें परिवर्तित कर देती है, परन्तु जब हम कुदरतका सामना करके अश्रद्धालु बन बैठते हैं उस वक्त अपरिवर्तित पानके समान हममें दुर्गन्ध की वृद्धि होती रहती है। न फिराये हुये घोड़ेके समान हमारी गति रुक जाती है और अन्तमें चूल्हे पर न फिराई हुई रोटीके समान हमारे नाश का भी प्रारंभ हो जाता है। इस रीतिसे (विकृत परिणाम में रूढ़ होकर) हम पिता वै जायते पुत्रः—यापके समान घेदावाली कहावत को भूठा ठहरा कर पुरातन श्री वर्धमान जैसे बुजुर्ग को भी आचार और विचारमें अपने समान मानते हैं यह क्या कम अविवेक है ?

सर्व साधारण लोकहित की ओर दुर्लक्ष्य करके सिर्फ अहंपदी, स्वार्थी और लोलुप बनेहुये ब्राह्मणों ने वैदिक प्राचीन सत्योंमें अनेक सम्मिश्रण कर परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनीय वैदिक पद्धति में परिवर्तन न करके वर्तमान वैदिक धर्मका श्री वर्धमान और बूढ़





आज भी पारतन्त्र्य की विषम याचना सह रहा है।

उन ब्राह्मणों ने उस समयके भोले भाले समाज को यह उपदेश दिया था, कि हम जो कहें वही सत्य है, हमारे कथनमें किसीको शंका या प्रश्न करने का अधिकार नहीं है। हमारा निर्णय ईश्वरीय निर्णय है, क्योंकि हम ईश्वरके प्रतिनिधि हैं। 'शूद्र नीचने नीच होने के कारण उन्हें नगरमें या गांवमें रहनेका अधिकार नहीं। यदि वे नियत किए हुये समयके पिना गांवमें तथा नगरमें आवें तो उन्हें प्रादण्य की शिक्षा देना यह राजाका कर्त्तव्य है, ऐसा न करनेवाला राजा गर्भपातके पापका भागी बनता है। 'शूद्रोंको घरबार का

१ शूद्राश्च ब्राह्मणां चरुहाताः । X X X कश्चि  
न्यस्येति । दूषति नृपान्प्रकृत्य बहिरपोहति ।  
अनाइ बहिर्दूषे स्ववर्गीयं निवेष्टे । नम्राहाइ परं शाने  
न विरुपयन्, विवेचयेइ राजा उच्यः, अन्यथा ब्रूहस्पति-  
नवाप्नोति ईशानम धर्मं ३५ पृ० ३८ । ।

२ व्यासवन्द इत्येवम वचन । ३३ । ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ । ८५ । ८६ । ८७ । ८८ । ८९ । ९० । ९१ । ९२ । ९३ । ९४ । ९५ । ९६ । ९७ । ९८ । ९९ । १०० ।



वैदिक सत्य इतना शोकित (सूज गया) होगया कि जिसके परिणाम में उपनिषदों के प्रवाह से उसे भूशायी होना पड़ा ।

यही दशा पोप धर्मकी है । यह धर्म पोप-लीला के नामसे प्रसिद्ध है । क्या इसके लिये यह कम शरम की बात है ? कहने का सारांश यह है कि परिस्थिति एवं लोकहित को भूल जानेसे धर्ममें अनिष्ट तत्व पैदा होजाता है और हुश्रा है । जो लोकहितके साधन हैं वे भी परिस्थिति के विरोधि प्रवाहमें सहने के कारण कितने एक प्राणियों की आत्माको जकड़ने के लिये रस्सी का काम करते हैं । आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं, कि रक्षा करने वाली घाड़ ही खेतको खा रही है, धारण करने वाला धर्म ही उसके आश्रितों को नीचे पटक रहा है और माता पिताके समान धर्म गुरुओं को अपनी सन्तान की वेदना पूर्ण कराहना की ओर हठिपात करने तकका भी अवकाश नहीं मिलता । वे अनेक यातनायें सहते हुये जीते जागते जैनियों की सोचनीय दशा पर दुर्लक्ष्य कर अपनी वंशवृद्धि की चिन्ता



हूँ कि वे अथ या तो बदले की नीतिको ध्यानमें लेकर अपनी स्थितिको सुधारें या पूर्व मुनियोंके समान आवकों का संसर्ग छोड़ कर यनवासी बन जायें ! परन्तु आवकोंके हितके घटाने उनके साथ सम्यन्ध रखने वाले खाते खोल कर और उनके प्रत्येक व्यवहारिक कार्यमें दस्तन-दाजी करके सरकारी पुलिस के समान उनमें पारस्परिक फूट डालकर उन्हें विशेष कदर्थित करने के घृणित कार्यको छोड़ दें ।

अथ हम पाठकोंका इस ओर ध्यान खींचते हैं कि जैन धर्ममें ऐसे कौनसे परिवर्तन हुये जो इष्ट परिवर्तन और अनिष्ट परिवर्तनकी कोटिमें आ सकते हैं और वे मूल जैन धर्मके साथ कितना सम्यन्ध रखते हैं एवं उस तरहके उसमें संमिश्रण किस २ समयसे प्रचलित हुये हैं । मानव जाति इननो अपूर्ण और परतंत्र है कि उसे प्रत्येक प्रवृत्ति में किसी एक नायक की आवश्यकता पड़ती है । नायक बिना व्यवस्थित प्रवृत्ति नहीं हो सकती । घर सम्यन्धी, बाहर सम्यन्धी, लौकिक या पारलौकिक समस्त प्रवृत्तियों में प्राप्त होनेवाली सफलता का कमसे



धी—अर्थात् उनमें सदैव परम माध्यस्थ भाव रहता था। जो स्थिति परम माध्यस्थ की पराकाष्ठा तक पहुँचे हुये मनुष्यकी होती है वैसी स्थिति श्रीवर्धमानकी थी। उनकी समस्त क्रियायें आदित्यिक होती थीं। जो योगी भोंपड़ी का घास खाने वाली गायको हटाने में अपने माध्यस्थका भंग समझना हो उस पर लोक कल्याण कर भावना का आरोप देना यह मात्र उसकी यशोवर्धना है। श्रीवर्धमानकी यह परिस्थिति आचार्य-रांगसूत्रके नवमें अध्ययन और सूत्रकृतांग सूत्रमें वीरस्तुति नामक प्रकरणके अनाडम्बरी उल्लेख से साफ साफ मालूम हो जाती है। ऐसी वृत्ति वाले श्रीवर्धमानके हाथसे ही हमारे धर्मकी संगठना या संघ रचना का होना मेरी दृष्टिमें सर्वथा अनुचित मालूम होता है। उस समय श्रीवर्धमान ने जो कुछ लोक जागृति की थी उसका समस्त श्रेय उनके मुनिव्रतको ही था। वर्तमान समयमें महर्षि गांधीके समान कहनेकी अपेक्षा कर

१ पारम्पर्येण केवल ज्ञानस्य तावत् फलमौदासीन्यम्

॥४॥ स्वाकरावतारिका. दृष्टा परिच्छेद । औदासीन्य शब्द

का विशेष विवेचन इस सूत्रकी टीका में देखा





थी—अर्थात् उनमें सदैव 'परम माध्यस्थ भाव' रहता था। जो स्थिति परम माध्यस्थ की पराकाष्ठा तक पहुँच चुके ननुष्यकी होती है वैसी स्थिति श्रीवर्धमानकी थी। उनकी समस्त क्रियायें औद्योगिक होती थीं। जो योगी भौषड़ी का घास खाने वाली गायको हटाने में अपने माध्यस्थका भंग समझता हो उस पर लोक कल्याण कर भावना का आरोप देना यह मात्र उसकी यशोवर्धना है। श्रीवर्धमानकी यह परिस्थिति आचारंगतूत्रके नवमें अध्यायन और तूत्रकृतांग तूत्रमें वीरस्तुति नामक प्रकरणके अनाद्वयरी उल्लेख से साफ साफ मालूम हो जाती है। ऐसी वृत्ति वाले श्रीवर्धमानके हाथसे ही हमारे धर्मकी संगठना या संघ रचना का होना मेरी दृष्टिमें सर्वथा अनुचित मालूम होता है। उस समय श्रीवर्धमान ने जो कुछ लोक जागृति की थी उसका समस्त श्रेय उनके मुनिव्रतका ही था। वर्तमान समयमें महर्षि गौरीकि सम्मान कहनेकी अपेक्षा का

१. पारम्पर्येण केवल ज्ञानस्य तावत् एतन्निर्दानान्यसु

८५ : आचारंगतूत्रका पृष्ठ : १८५ : श्रीवर्धमान

का विचार 'वज्रचक्र' में सूत्रों की संख्या से प्राप्त



स्थिर नहीं रह सकती। यद्यपि वह नियमबद्ध संगठना मात्र परिवर्तन की पात्र है, तथापि नियंत्रणके कारण वह अपने मूल स्वरूपसे भ्रष्ट नहीं होती। स्थविरोंने जो नियमबद्ध संगठनायें चाँधी थीं वे सिर्फ निर्ग्रन्थों के लिये ही थीं।

वास्तविक निर्विकारि और अनपवादि स्वरूप निम्न लिखे अनुसार है।

१-किसी भी मुमुक्षुने प्राणान्त होने तक किसी प्राणीको दुःख हो वैसी प्रवृत्ति न करना, न कराना और न दूसरेको वैसा करनेकी सम्मति देना।

२-किसी मुमुक्षुने प्राणान्त होने तक असत्य न बोलना, न दूसरे से बोलाना और न ही दूसरे को असत्य बोलने की अनुमति देना।

३-किसी मुमुक्षुने प्राण जाने तक दूसरेकी वस्तु उसके दिये बिना न लेना, न दूसरेसे लिवाना और न ही दूसरेको वैसा करने हुये अनुमति देना।

४-किसी मुमुक्षुने प्राण जाने तक अब्राह्मचर्य न



ना था । सभी मुमुक्षु पात्र न रखते थे ।  
 तने एक मुमुक्षु मात्र करपात्र थे । वैसा करने  
 असमर्थ मुमुक्षु मात्र एक या दोही पात्र  
 बने, तो भी त्यागकी दृष्टिसे मट्टीका पात्र  
 शेष ठीक माना जाता था । नग्न रहने में ही  
 शेष त्याग समाया था । अधिक मुनि समु-  
 त्त नग्न ही रहता था । परन्तु जो लज्जाको  
 जीत सके थे वे मात्र एक ही वस्त्र धारण  
 करते थे । स्मरण रखना चाहिये कि उस समय  
 आदर्श श्रावक भी मात्र दोही वस्त्र—एक  
 नीली और दूसरा ग्वेश परिधान करते थे ।  
 ग्राममें निवास करना और गृहस्थियों का  
 शेष सहवास संयमके प्रतिकूल गिना जाता  
 था । नववाड़ों को पालन करने में विशेष ध्यान

१ देखो आगमोदय समितिवाला सूत्रज्ञान सूत्र, उक्तमार्ग-

परमन माया ८-१०, पृ० ८-१०

२ नमस्त एगेयं सोममुपलेपं, अक्षुभं वन्द्यं वि-

पुत्राणि.. अर्थात् तानन्द आदि सोममुपलेप दानं करने

में अक्षुभं सिद्ध अर्थात् पूरा प्रदत्त न करने का निमित्त

कहा है । उक्तसूत्र दर्शनसूत्र, पृ० ३, ८-१०

लेखात् ।



ता और नूमिके समान सर्व सहनता तक पहुँचे थे, परन्तु उसके तीव्र अभिलाषी थे वे जाने ध्येय तक ही पहुँचने के लिये कितनीएक प्रहण करते थे। वह छूट भी और किसी त में नहीं किन्तु सिर्फ एक दो पात्र रखने पर एकाघ चक्र, सो भी गृहस्थ का चर्ता हुवा देने की छूट रखते थे। यह छूट लेने पर भी उनकी सदैव यही भावना रहती थी कि हम सब लज्जाको जीत कर सर्वथा यथागत होकर, चक्र की भी गरज न रख कर संयमका निर्वाह करके अपने उस उच्च लक्ष्य को प्राप्त करेंगे। छूट लेने वाले छूटका समर्थन न करते थे, परन्तु उस तरह वृद्ध अनुभवी वैद्यकी अनुमति से मीठी औषधि सेवन करता है उसी तरह उसका खाने करते थे और आतुरता के साथ ऐसे समय की प्रतीक्षा करते रहते थे कि शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो और इस औषधि से पीछा छूटे। इस प्रकार का उनका आचार था। यहाँ पर मैं उनके आचार के सम्बन्ध में बहुत कम लिख सका हूँ, परन्तु इस विषय को परिपूर्ण समझने की जिज्ञासा वाले पाठकों से मैं निवेदन करना चाहूँ कि वे आचारांग सूत्र भाषान्तर आद्योपान्त











और उसके लिये धर्ममान में बड़े बड़े मुकदमे करने तक भी नहीं चूकता । यह दया दिगम्बर जैन समाज की है । श्वेताम्बर पक्ष यन्त्रपात्र यादको ॐ ही श्वेलम्पिन करता है । उपरोक्त प्रकारसे उसके सूत्र ग्रन्थों में स्पष्टनया अनेक लक्षणा का विधान विद्यमान है, तथापि अनेक शब्दका अनुदरा कन्याके समान अपेक्षा लिये अनुकूलार्थ दिया जाता है । जिसके परिणाममें आज इस समाजके मुनि यन्त्रपात्रके गढ़ तक रखने लग गये हैं । इनमेंसे मेरा श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संप्रदाय मूर्तिवाद को ही स्वीकारता है और सो भी नहीं तक कि मूर्तिके नामसे परमेश्वर मुकाने प्योलकर लाम्बों रूपोंका भवन समझनेमें ही इन्डागन की प्रार्थिका स्थान देवता है, मूर्तिके ही नामसे विदग्धा अदालतोंमें जाकर समाजकी अनुमति से मूर्तिपूजका समाज क

[illegible]





[illegible]



आधीके ताले लगाकर उसे अपना कैदी  
 रक्खा है। जिस तरह ज्ञानके लिये वैदिक धर्ममें  
 वेदोंका ठेका ब्राह्मणों ने ही ले रक्खा है वैसे ही  
 इस पक्षके मुनि (चाहे वे मेरे जैसे गृहस्थके पास  
 ही पड़े हों) कहते हैं कि सूत्र पढ़नेका अधिकार  
 मात्र हमें ही है—आयकों को नहीं। उनकी धार्मिक  
 संपत्ति में परम निर्मन्थता, आदर्श आयकता,  
 उच्च जीवन, अनामकी जीवन, परम अहिंसकता,  
 प्रमाणिकता, मार्गानुसारिता, इत्यादि सद्गुणों  
 के बदले बिलासी साधुता, नामकी आयकता,  
 चेलोंकी वृद्धि, पुस्तकोंकी ममता, अयुक्त पदविषों  
 का मिथ्या आदम्पर, गुणी और गुणकी ओर  
 ईर्ष्यामृता, बड़े बड़े देवालय, अनेकक और परम  
 तपस्वी तीर्थंकरों के लाखों रुपयेके जेवर  
 तथा शत्रुंजयवारी आर्द्राश्वरका कई लाखका  
 जयाहगर्न। मुकूट है। मुझे अपने इस कामनसीप  
 समाजकी दुर्देशका निश्च नीचने हुये बड़ा दुःख  
 होता है। मैं यह भी मानता हूँ कि यदि तम  
 समाजमें जहाँकि भाग्य समाज विचार शून्य  
 हाकर गनानुर्गमिक के प्रवादमें पड़ा जा रहा  
 है वहाँ विचारक अपने पूर्वजाक पणनाका अनु-  
 कूलनानुसार इतनाही कामकी प्रयत्न करेगा

संभव है कि उसकी और भी ग़राब स्थिति हो जाय । इस श्वेताम्बर पक्षमें एक और पन्थ है, जिसे स्यानकवासी के नाम से पहचानने हैं । यह संप्रदाय मूर्तिवादको नहीं मानता । इसके साधुओंमें कहीं २ पर त्यागकी भावना देय पड़ती है, परन्तु वर्तमानमें वे भी अपने लक्ष्यसे विलक्ष्य हो फैशन की ओर ग्विचे जा रहे हैं । मेरी मान्यताके अनुसार मूर्तिवादको सर्वथा अप्रिय मानना भी अनुचित है । ऐसा करनेसे बहुत से बालजीवोंके जीवनविकाश में बाधा पड़ती है, "भक्तिमार्ग का अवलम्बन करने वालों का कल्याण अटक जाता है" । ग़ैर, करे सो भरे और जैसा पोषे वैसा काटे । मुझे सयसे विशेष यह बात ग़टकती है कि इन तीनों पक्षवालों ने भले ही अपने २ अनुकूल गुदे २ मन्त्रण्य प्रचलित किये, परन्तु इन्होंने उन मन्त्रण्यों को वर्धमान के नाम पर बढ़ाने का जो साहस किया है उसे मैं भयकर पाप-अपराध-अन्याय मानता हूँ और यह अपराध करने हुए उन्होंने अपनी अनुकूलानुसार सकलित किये हुए अपने २ मन्त्रण्य का जो अकान्त समर्पण और परम

इतर का तिरस्कार किया है इसे मैं महा भीषण तमस्तरण की भगिनी समझता हूँ ।

पाठक प्रश्न करेंगे कि इस तरह रजसे गात्र बनने और राईसे पर्यंत बननेका हेतु क्या है । उत्तर में मुझे नम्रता पूर्वक कहना पड़ेगा कि इसका एक मात्र हेतु जैन साहित्य का विकार है । साहित्यमें समय समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है, परन्तु जो परिवर्तन अनिष्टाकार में होता है उसका परिणाम समाज के हितके बदले विनाश में उपस्थित होता है ।

शरीर में बड़ा हुआ सौजा एक भीषण व्याधि माना जाता है, वैसे ही साहित्य पर बड़ा हुआ एकान्तताका और अनुकूलता-स्वाच्छन्द्यका सौजा भी लगना ही भयंकर है । साहित्य के मौजोंको उतारनेके लिये यदि कोई अमोघ उपाय हो तो वह उसका व्यवस्य इतिहास है । यहाँ पर मुझे पाठकोंके सामने साहित्यके साथ सम्बन्ध रखनेवाली सामान्य ऐतिहासिक परिस्थितिके कारण काव्यका अवनति नहीं है, तथापि अवनति विषयक मूल मुराका दृष्टिकोण पूर्वक स्वीकारा विवरण करना है यद्यपि अनन्त

समझता हूँ । उन मुद्दोंका क्रम मैंने इस प्रकार रक्खा है । १ श्वेताम्बर दिगम्बरवाद, २ चैत्यवाद, ३ देवद्रव्यवाद, और ४ आगमवाद । मेरा सारा व्याख्यान ( यह नियन्ध ) इन चारों मुद्दों में ही पूर्ण होगा ।

पहले मुद्देमें दिगम्बर श्वेताम्बर के इतिहास को प्रकाशित करना है । उसमें दोनों मतों के मूल कारणोंके सम्बन्धमें विरोध नवेषणा पूर्वक विचार करना है और साथ ही इस पान का भी विचार करना है कि अंगस्तूत्रों में इस विषयमें क्या २ प्रतिपादन किया गया है, एवं श्वेताम्बर दिगम्बरोंके संप्रदाय भिन्न हुये बाद उन शासन को बंसी २ धराय स्थितियोंमें से गमन करना पड़ा है ।

दूसरे मुद्देमें चैत्यवाद पर प्रधान हाथा जायगा । उसमें मुख्यतया छन्दस्य श्रमाओं कीति चैत्यवाद का मूल अर्थ समझाया जायगा और साथ ही यह भी बतलाया जायगा कि अंगस्तूत्रोंमें चैत्य शब्द किस २ जगह कैसे कैसे अर्थोंमें उपयुक्त किया गया है । चैत्यकी उपपत्ति का और उसका मूलतत्त्व इतिहासके

इतर का तिरस्कार किया है इसे मैं महा भीषण तमस्वरण की भगिनी समझता हूँ ।

पाठक प्रश्न करेंगे कि इस तरह रजसे गर बनने और राईसे पर्यंत बननेका हेतु क्या है । उत्तर में मुझे नम्रता पूर्वक कहना पड़ेगा कि इसका एक मात्र हेतु जैन साहित्य का विकार है । साहित्यमें समय समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है, परन्तु जो परिवर्तन अनिष्टाकार में होता है उसका परिणाम समाज के हितके बदले विनाश में उपस्थित होता है ।

शरीर में बढ़ा हुआ सोजा एक भीषण व्याधि माना जाता है, घेरे ही साहित्य पर बढ़ा हुआ एकान्तताका और अनुपलब्धता-व्याप्यताका सोजा भी उगता ही भगंकर है । साहित्य के सोजेको उगारनेके लिये यदि कोई यमोप उपाय हो तो वह उसका यथानुष्ठान इतिहास है । यहाँ पर मुझे गाढ़ताके समस्त साहित्यके साथ सम्बन्ध स्मरणार्थी समस्त ऐतिहासिक परिस्थितिके कथन करनेका अवकाश नहीं है, तथापि अपने विषयके मूल मुरोंको स्पष्टतः पूर्वक स्मरणार्थ दिवेकर बताया है अगला कथन

समझना हैं। उन मुद्दोंका प्राम मँने इस प्रकार  
 रखा है। १ श्वेताम्बर दिगम्बरवाद, २ वैश्य-  
 वाद, ३ देवद्रव्यवाद, और ४ आगमवाद। मेरा  
 सारा व्याख्यान ( यह निबन्ध ) इन चारों मुद्दों  
 में ही पूर्ण होगा।

पहले मुद्देमें दिगम्बर श्वेताम्बर के इति-  
 हास को प्रकाशित करना है। उसमें दोनों मतों  
 के मूल कारणोंके सम्बन्धमें विशेष गवेषणा  
 पूर्वक विचार करना है और साथ ही इस बात  
 का भी विचार करना है कि अंगरेजों में इस  
 विषयमें क्या र प्रतिपादन किया गया है,  
 एवं श्वेताम्बर दिगम्बरोंके सम्बन्ध निम्न हुये  
 बाद जैन शास्त्र को धरती ६ पराद स्थितियोंमें  
 से समझ करना पड़ा है।

दूसरे मुद्देमें वैश्यवाद पर प्रकाश डालना  
 लायगा। इसमें मुख्यतया कनेक प्रमाणों सहित  
 वैश्यवाद का मूल कार्य समझाना लायगा और  
 साथ ही यह भी बतलाया जायगा कि इस  
 मुद्देमें वैश्यवाद १६००, १७०० ईस १८००  
 वर्षोंमें उपजुल किता गया है। वैश्यवाद १८  
 वर्षोंमें १८०० ईस १९०० ईस १९०० ईस

साथ क्या सम्बन्ध है इस बातका भी स्पष्टीकरण किया जायगा, एवं इस दूसरे मुद्देमें मूर्ति पूजाकी आवश्यकता बननाके बाद मूर्ति कैसी होनी चाहिये ? उसे कहां रखना चाहिये ? वह नाम होनी चाहिये या कन्दारे वाली-कई सूत्र वाली होनी चाहिये ? इत्यादि मूर्ति विषयक अनेक प्रश्न, प्रमाण पूर्णक स्पष्ट करनेका मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ ।

तीसरे में देवद्रव्य के सम्बन्ध में चर्चा होगी । यह कल्पित है या अहिंसा वगैरह के समान अपरिवर्तनीय तथ्य है ? अंगसूत्रों में उसका विधान या उल्लेख है या नहीं ? उसकी उत्पत्ति या प्रारम्भ कबसे हुआ ? किसने और किस लिये किया ? इत्यादि विषयों पर व्याख्यान विचार किये बाद देवद्रव्य का वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में खुलासा करनेका प्रयत्न प्रयत्न किया जायगा । ध्यान है कि इस गोपान देवद्रव्य के साथ सम्बन्ध रखने वाला कितनाएक कथावाची शास्त्रीय असंगतता बनना कर जैन कथानुयोग के सम्बन्ध में भी दो शब्द लिखे जायें





## श्वेताम्बर दिगम्बरवाद ।

—ॐॐॐॐ—

श्वेताम्बर और दिगम्बर में दोनों शब्द जेठ संवत्समके धम्मपापायकों-ध्यायकोंके साथ जग भी सम्बन्ध नहीं रखते । यदि उनके साथ सम्बन्ध लगाया भी जाय तो दोनों शब्दों का उनमें प्रवृत्तिकारण न पदमेसे उनके लिये वे दोनों शब्द निरर्थक से ही हैं । उनमें श्वेताम्बर या दिगम्बर मूर्ध्नि करनेवाला एक भी चिन्ह न होने से श्वेताम्बर और दिगम्बर संज्ञा वर्णनी कीड़ेको इद्रगोत्र ( इद्रका पालन करने वाला ) कहने के समान पारम्परिक शब्द और अर्थ शून्य है । यदि श्वेताम्बर कहलाने वाले गृहस्थ मात्र श्वेत हो यन्त्र पहनने हो और दिगम्बर कहलाने वाले नम्र ही रहने हो तो उनके लिये उपरोक्त शब्दका व्यवहार किया जा सकता है, यह व्युत्पत्ति शास्त्रज्ञानमय है । इससे से यह अनुमान कर सकता है कि उन शब्दोंकी प्रवृत्ति चाह तथे हुई हो परन्तु उसका मूल कारण हमारे भुवनराज ही जान चाहिये । इन शब्दोंके मूल प्रवर्तक साधु भुवनराज का

वर्तमान सरकारकी ओरसे धन्यवाद मिलना चाहिये, कि जिसके परिणाममें वह अदालतों के द्वारा दोनों समाजोंसे लाखों रुपये कमा रही है। श्वेताम्बर और दिगम्बर संज्ञाका सम्बन्ध मुनियोंकी चर्याके साथ ही है, इससे और भी एक बात मालूम हो जाती है और वह यह कि—उस समय दोनोंके श्रमणोपासकों की चर्यामें कुछ भी भेद न होगा। वर्तमानमें जो भेद देख पड़ता है वह उन्हीं तपोधनों के दुराग्रहरूप तालपृच्छा रस है जिन्होंने साधारण-प्रकारके भेदको भी एक मार्गरूप से पकाड़ रक्खा होगा। इस बातकी यथार्थता का अनुभव तो नभी हो सकता है जब कि हमारा पीया हुआ कदाग्रह-तालपृच्छ रसका नसा उगल सके।

श्वेताम्बरोंके सूत्र कहते हैं कि वज्र और पात्र भी रखने चाहिये, इनके बिना दुर्बल, सुकुमार और रोगियोंके शिष्य संयम हुनागण्य है। यदि साधु वज्र न रखे तो टंटीके नासन में कस्तनशील साधुओंकी क्या दशा हो ? यदि सुलगान्तर गायनेमें जो हिंसा लगती है वह गायनेमें नहीं लगती है।

मुनिगोत्रों विशेषतः जंगलोंमें रहनेके काम  
 क्यों कर होय मरुदा आदि जन्तुओंका उखा  
 होमेका विशेष सम्मन है, अतः जो मुनि एक  
 दुःख न सह सकता हो यदि वह वस्त्रादि र  
 रक्खे तो उसे बिना कारण संयम पाखने में  
 पड़ि दटना पड़ना है । तथा जिस मुनिने कप  
 ठों नहीं जीता है उसे भी वस्त्र रखने की आवश्यकता है । क्योंकि वह मुनि कड़ा दूदा व  
 पुराणा, मैला कुचैला या किसीका उमरा हुआ  
 वस्त्र अपनी कमर पर लपेट कर हाउताको जीत  
 नेका प्रयास कर सकता है । जब उसे जरा भी  
 लोकाज का भय न रहे तब वह यदि वस्त्र र  
 रक्खे तो ऐसा हो सकता है । इसी प्रकार पात्र  
 रखने में भी संयम की ही साधना समाई हुई  
 है । आहार करते समय मात्र हाथ ही में लेकर  
 स्निग्ध और द्रवित पदार्थ लानेसे उसका कित  
 नाएक हिस्सा नीचे भी गिर जाता है और  
 उससे कल्पित दृष्टिसे हिंसा का विशेष संभव  
 है । तथा जो मुनि बीमार हो, विस्तर से उठ न  
 सकता हो उसका भी पात्र बिना निर्याह नहीं हो  
 सकता । यदि पात्र हो तो उसके लिये दूसरा  
 मुनि पात्र द्वारा तदुचित आहार पानी ला

सकता है, एवं पात्र होनेसे ही उसके साथ  
 वगैरह काम हो सकने हैं । जो साधु घर पात्र  
 रखने बिना निर्दोष संयम पाल सकने हैं उनके  
 लिये घर पात्र रखनेकी कोई राजाज्ञा नहीं है ।  
 विष्णुसूक्त ७ वीं ८ वीं शताब्दी तक सां साधु कारण  
 पढ़ने पर ही घर रखते थे, सां भी मात्र एक  
 कटीपत्र ही रखते और यदि वह कटीपत्र भी  
 निष्कारण पढ़ना जाता सां वह साधु कुसाधु  
 माना जाता था । इस विषयमें श्री हरिभद्र  
 मूर्ति ने अपने संधोध प्रकरण में इस प्रकार  
 उल्लेख किया है ।

‘कौशो न कुल्लर लोपं, लज्जर पट्टिमाइ जह  
 मुपदेर । नोपाहणो न हिंदइ वेपइ कटिपट्ट-  
 पनकले’ (संधोध प्रकरण ६० । २ ।)

अपने समय के कुसाधुओंका स्वरूप दर्शाते  
 हुये श्री हरिभद्रमूर्ति ने उपरोक्त वाक्यांशों में  
 बताया है कि ‘कौशिक-दुर्लभ’ प्रकार का लोप नहीं  
 करने, कटिपत्र पर न काम करना है । शरीर पर  
 का मन लगाने से, ऐसीमें लज्जर वस्त्र पहने  
 से और-दिमाग कुल्लर करने का मत है ।

इस प्रकार साधुओंको एक कदिवस्त्र ही रखने की बात साधित होती है और सो भी सूत्र साहित्य की संकलना दृष्टे बादके ग्रन्थोंके याने अर्पार्थनि ग्रन्थोंसे प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में आचारांग सूत्रमें लिखा है कि जो साधु वस्त्र नहीं रखता उसे यह चिन्ता नहीं रहती कि—मेरा वस्त्र फट गया, दूसरा वस्त्र मांगना पड़ेगा, सूत मांगना पड़ेगा, सूई मांगनी पड़ेगी, धागा सीना पड़ेगा, पहनना पड़ेगा इत्यादि ( ३६० )

“वस्त्र रहित रहनेवाले मुनियोंको कदाचित् तृण काटे, ठंडी, ताप लगने, झांस, मच्छुर वगैरहका कष्ट सहना पड़े, परन्तु ऐसा करनेसे लाघव ( अल्प चिन्ता—निरुपाधिकता ) प्राप्त होती है और तप भी होता है” ( ३६१ ) ।

“अतः जो भगवानने कथन किया है उसी को समझ कर ज्योंचने त्योंसब जगह समानतः जानते रहना, ( ३६२ )

आचारांग सूत्रके उपरोक्त उल्लेख से यह बात साफ मालूम होती है कि समर्थ एवं सहन

2

+

-

+

+

+

+

रहित-नग्न होता है उसे यह मालूम होता है कि मैं घासका या काँटेका स्पर्श सह सकता हूँ, शीत, ताप, डांस, तप मच्छरों के उपद्रवको सहन कर सकता हूँ एवं अन्य भी प्रतिकूल, अनुकूल परिपहं सह सकता हूँ। परन्तु नग्न रहते हुये लज्जा-परिपहको सहन न कर सकने वाला मुनि कटि-बन्धन-कटिवस्त्र रक्खे। ( ४३३ )

“यदि लज्जाको जीत सकता हो तो अर्चो ( नग्न दिगम्बर ) ही रहना। वैसे रहते हुये तृणस्पर्श, शीत, ताप, डांस, मच्छर तथा अन्य भी जो अनेक परिपह आवें उन्हें सहन करने ऐसा करनेसे अनुपाधिकता-लाघव प्राप्त होता है और तप भी होता है। अतः जैसा भगवानों काहा है उसीको समझ कर ज्यों बने त्यों सा जगह समता समझते रहना” ( ४३२ )

कितनेएक मुनि एक वस्त्र और एक ही पात्र रक्खते थे या दो वस्त्र और दो ही पात्र रक्खते थे। इस विषयमें निम्न उल्लेख से यत्न-लापा गया है कि—

“जिस साधुके पास पात्रके साथ मात्र एक





तप प्राप्त होता है, अतः जैसा  
 किया है उसे वैसा समझ कर ज्यों  
 समता समझना" (४२५) ।

जो मुनि सहनशीलता के अभाव  
 लज्जाके कारण एक या दो वस्त्र रखते  
 वस्त्रधारी साधुओंके विषयमें आचार्य  
 निम्न लिखे मुजय बतलाया है ।

"निष्ठु या निचणी एषणीय वस्त्रोंकी  
 करे, जैसा मिले वैसा पहने, परन्तु उसमें  
 न करे, तथा उसे धोना या रंगना नहीं  
 धोया हुआ या रंगा हुआ हो तो पहन  
 एवं सामान्तर जाने समय वह भक्ष्यवस्तु  
 उसे द्रिपाये नहीं, वस्त्रधारी मुनि  
 आचार है" (५३२) ।

स्वानांग मूत्रमें भी वस्त्र रगनेके या  
 बनावे हैं, जैसे कि "ये तीन कारण हो तों  
 (५३४) एक वस्त्र धारण करना, लज्जा  
 और परिषद, अर्थात् जो मायू लज्जा,  
 नहीं तीन मर। है और मरकों का मर  
 का मरता वह एक वस्त्र धारण करे

जो कारण बस्त्र रगने के ऊपर बतलाये हैं वैसे ही पात्र रगने के कारण भी सूत्र ग्रन्थोंमें उल्लिखित हैं। इस विषयमें भी आचारांग सूत्र के पूर्वोक्त पात्रैपणा, नामक प्रकरणमें निम्न लिखित उद्देश्य मिलता है।

“मुनि या आर्याको जय कभी पात्रकी आवश्यकता पड़े उस समय तुंघीपात्र या मट्टीका पात्र ग्रहण करनी। इसी तरहका कोई भी पात्र ग्रहण करना। जो मुनि युवा या मजबूत पाँधे वाला हो उसे मात्र एक ही पात्र रगना चाहिये, दूसरा नहीं।” (८४१)

उपरोक्त विषयको पुष्ट करने वाला स्थानांगसूत्रमें भी निम्न उद्देश्य पाया जाता है -

निर्घन्ग या निर्घन्धी तीन प्रकारके पात्रों को उपयुक्त कर सकते हैं, तुंघी पात्र, बाह्य पात्र और श्लिष्ट पात्र, पात्र रगनेके कारण रगने लगे हुए स्थानांगसूत्रकी पात्रकी सतान्दीकी रचित टीकामें भी निम्न उद्देश्य मिलता है -

“जसक, बाह्य, दृढ़, नयान दाहक निष्ठ, क्षतिवि, सुर और सतनदीक दग इन सब

लिये पात्र रखनेकी आवश्यकता है, तथा साधारण साधु समुदायके लिये और जो साधु पिना-  
पात्र निरवयव रीतिसे आहार न कर सकता है।  
उसके लिये भी पात्र की आवश्यकता है।”

१—‘जे अचेले परिवृत्तिए, तस्सणं भिक्खुस्स जो एं  
मग्गः—परिजिन्ने मे वस्ये, पत्ये जाइस्सामि, सुवं  
आइस्सामि, सुइं जाइस्सामि, संधिस्सामि, सीकि  
स्सामि, उहमिम्मामि बोक्कसिस्सामि, परिंरि  
स्सामि पाउणिम्मामि’ । (३६०)

“अद्भुता तस्य पराक्रमं मुञ्जो अचेलं तण्णामः  
कुमति, सीयद्यामा कुमति, तेउफ्फामा कुमति, दंम-  
ममगद्यामा कुमति, एगपरे, अन्नपरे विरुवस्से  
कामे अदिपामेति । अचेलं सापदं भागममाणं,  
तवं मे अमिगमण्णाय मवति” (३६१)

“अद्भुतं मगवता पवेदिम तमेव अमिगमेषा मव्वतो  
मव्वनाए ममममेव मममित्राणिता” । (३६२)

२—“अद्भुता तया पट्टिमा—म भिक्खु ता भिक्खुणीदा,  
मे वे पुत्ता इव वासता । तया—अचरिअमं  
दा पुत्तापुत्तमता अचरिअमं १-२ १-२ ता वा  
अचरिअमं १-२ अचरिअमं १-२ १-२ १-२



४—“जे मिक्खु एगेण वत्थेण परिबुत्तिवे पापविस्सिक्खु  
तस्मिणो एव भवइ-चित्तिमं वत्थं जाइस्सामि ।  
अहंसणिज्जं वत्थं जाणज्जा, अहापरिमादियं  
वत्थं धारेज्जा-जाव गिम्हे पडिवन्ने, अहापरिउ-  
वत्थं परिइवेज्जा । अदुवा एगमाडे, अदुवा अणे  
लावयियं आगममाणे तवे से अमिममन्नागण मव  
जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अमिममेया सज्जा  
मव्वत्ताण ममत्तमेव, मममिजाणिया” (४२६)

“से मिक्खु दोदिं वत्थेहिं परिबुत्तिवे पातनत्ति  
तस्मिणो एव भवति-तत्तिमं वत्थं जाइस्सामि  
मे अहेगणिज्जाइ वत्थाइ जाणज्जा जाव-  
सलु तम्म मिक्खुम्म गामग्गिये” (४२४)

“अह पुण एव जाणज्जा, उवाइने सलु हे  
गिम्हे पडिवन्ने, अहापरिउन्नाइ वत्थाइ पा  
वेज्जा, अदुवा गतत्तरे, अदुवा थोमणेनण, अ  
एगमाडे, अदुवा अणेजे मापयियं आगममाण  
तवे मे अमिममन्नागण मवति । जहेयं भगा  
वेइदिनं तमेव अमिममेया मग्गो मव्वत्ता  
ममत्तमेव अमिममिजाणिया” (४२२)

५—“म मिक्खु स विवन्ने-स अहमणिज्ज  
अदुवा जाणज्जा अहमणिज्जो वत्थाइ जाणज्ज



अच्छी तरह नहाता धोता हो, इच्छानुसार वस्त्र पहनता हो और ऐसी रीति भाँति रखते हुये भी वह साधु या धर्मगुरुकी हैसियतसे प्रतिष्ठा या पूज्यता प्राप्त कर सकता हो तो मैं नहीं मानता कि उसका दूसरा त्यागी पड़ोसी उसके आचरणका अनुसरण करनेमें जरा भी विलम्ब करेगा। कठिन आचारों को पालन करने में, लज्जाको जीतनेमें, शरीर को वश रखने में और इसी तरहकी अन्य भी त्यागकी अनेक बातों में मनुष्य स्वभावसे ही शिथिल देख पड़ता है। इसी कारण वह अपनी अनुकूलता के अनुसार आचारों, नियमों एवं क्रियाओं को पालन करते हुये यदि धर्माचरण कर सकता हो तो वैसे सुकर नियमों की ओर वह भट भुक जाता है और जहाँ भुगवा रहने को कहा जाता हो, घस्र रहित होकर आचार पाला जाता हो तथा जहाँ पर शरीरके प्रत्येक सुर्भाने का निरोध किया जाता हो उस तरफ कोई विरला ही मुश्किलसे भुकना है। श्रंगसूत्र ग्रन्थोंमें जहाँ तक में देख सका हूँ श्री वर्धमान जैसे समर्थ योगी पुरुषके समक्ष भी नष्ट होनेमें श्री पार्वनाथ के सन्तानाय हिचकिचाये हैं। उन्होंने श्रीवर्धमान की

परीक्षा-मात्र कोरी चचनपरीक्षा लेनेके लिये कितने एक प्रश्न पूछे हैं और जय उनसे उनका समाधान हो गया एवं उसमें भगवान् पार्श्वनाथ के सिद्धान्त की साक्षी मिली तब ही उन्होंने श्री वर्धमान को मस्तक भुकाया है। सूत्रोंमें जहाँ २ पर श्रीवर्धमान और उनके निर्ग्रन्थों के समागम होनेका वर्णन आता है वहाँ पर सब जगह निर्ग्रन्थोंने उन्हें प्रदक्षिणा देकर वन्दन करके अपने वक्तव्य या प्रष्टव्यका प्रारंभ किया है, इस तरहकी संकलना प्राप्त होती है, इतना ही नहीं बल्कि स्कंदक जैसे अन्यमतावलम्बी तापसने भी वर्धमान को मिलते समय जैन निर्ग्रन्थों के योग्य उनका सत्कार किया है, यह उल्लेख भी भगवती सूत्र के दूसरे शतकमें विद्यमान है। परन्तु जहाँपर पार्श्वनाथ के सन्तानीय मुनियोंका वर्णन आता है वहाँ सर्वत्र उन्होंने वर्धमान वा उनके स्थ-विरोको मिलने ही तुरन्त साधारण सत्कार करने तकका भी विवेक प्रगट किया हो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु उन्होंने वर्धमान वा उनके मुनियोंके पास जाकर उनके साथ चान-चीत करके, उन्हें पहचानने के बाद वन्दनादि



करने और उनका धर्म स्वीकृत करनेका उद्योग मिलता है। सूत्रोंमें ऐसे अनेक उद्योग विद्यमान हैं। उनमेंके एक दो उद्योगकी ओर मैं पाठकोंका ध्यान खींचता हूँ—भगवती सूत्रमें नयमें शतकके पत्तीसवें उद्देशकमें एक गांगेर नामक पार्श्वनाथ सन्नानीय की कथा आती है, उसमें इस प्रकार पतलाया है कि ? “ए

१ “तेणं कालेणं, तेणं समणं वाणिज्जगारेणं खयरं होन्था, वण्णाओ, दुइपलासे वेइए, सानं समोमदे, परिमा णिग्गया, धम्मो कहिओ, परिमा पडिगइतेणं कालेणं, तेणं समणं पामावच्चिज्जा गांगेरेणं खामं अणगारे जेणं व समणे भगवं महावीरे तेणं उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता समणस्म भगवओ महावीरस्स अदूरमामते टिच्चा समणं भगवं महावीरे एवं वयासी”

“तत्परमिइ च एं मे (पामावच्चिज्जे) गांगेये अणगासमणं भगव महावीरं पत्तमिज्जाणइ—मत्तवण्णं मत्तवदग्गिमी । तण्णं मे गांगेये अणगासं समणं भगवं महावीरं तिइत्तुतां आयाइणवयाइणं वरेइ, वेइइ, णममइ वेइत्ता, णमामता एव वयासी—इच्छामि जं मने ! तुज्जे आतए वाइत्तनामाया वप्पमाया पनमइत्तइय, एवं जइ कानामपमिइत्तुत अणगासं नइ । माणिमय्यं ज्ञाय-





वे ऐसे नम्र होते हैं कि सर्वथा अनजान किन्तु गुणी वा तपस्वी मनुष्यको मिलते ही उचित सन्मान करना नहीं चूकते; अथ हमें यह समीक्षण करना चाहिये कि उन ऋजु प्राज्ञोंकी यह स्थिति कहाँ ? और हमारे ऋजु प्राज्ञोंकी वर्धमान जैसे दीर्घ तपस्वीकी परीक्षा लेनेवाली वह भी अनम्रवृत्ति कहाँ ? इस हेतुसे एवं ऐसे ही अन्य भी अनेक प्रमाणोंसे मैं यह निर्णय कर सकना हूँ कि वर्धमानके समय पार्श्वनाथ जीकी प्रजा सुग्वशील हो गई थी और वह भी यहाँ तक कि वर्धमान जैसे महापुरुष को पहचान सकने जितनी भी स्थिति न रही थी । भगवती सूत्रमें उसको संकलित करने वालेने एक जगह पार्श्वपत्नीय कालास्यवेशी अणुगार के मुखसे वर्धमान के निर्ग्रन्थोंकी सामायिकके सन्यन्धमें चर्चा कराई है । उस चर्चाके अन्त में वह पार्श्वपत्नीय साधु इस बातको स्वीकार करता है कि—“हे निर्ग्रन्थो ! जैसा तुमने सामायिक का स्वरूप बतलाया है ऐसा मैंने नहीं सुना, एवं वैसा मुझसे किसीने नहीं कहा” इत्यादि यह विषय भगवती सूत्रमें दस प्रकार

ॐ हस स ५

अणुगार बुद्ध हुवा-पोषको प्राप्त हुवा, अणु

ॐ "एतत्पुणं से ( पामावयिउजे )

अथगारे संज्ञे येरे मगवेते वंदर, यनेन;  
 शमंसिता एवं वयासी-एएसि णं मंते ! पयाणं  
 अएणाणयाए, असपशयाए, अघोहियाए, अशनिगमेणं  
 अदिडाणं, अस्सुयाणं, असुयाणं, अविण्णा. णं अमो  
 गडाणं, अयोधिरहाणं, अणिउज्झाणं, अशुवपाणि  
 याणं, एयमहं णो मइदिए, णो पत्तिरए, णो  
 इयाणि मंते ! एएसि णं पयाणं जाणहाए,  
 कोहियाए, अविगमेणं, दिहाणं सुयाणं, विण्णा. णं  
 वागडाणं, वोच्छिण्णाणं, णिउज्झाणं उववायिया  
 एयमहं मइहामि, पत्तियामि, रोणमि, एवमेणं मे जडे  
 तुममे वपइ । तए णं ने येग मगवेतो कालामवेमिपु  
 अथगारे एवं वयासी-गरहादि अज्जो ! पत्तिया  
 अज्जो !, रोणदि अज्जो ! मे जडेय चउदे वयामो । त  
 णं कालामवेमिपु. न अथगारे, वा अथगारे वडा. तमे  
 वंदिना मयमिली एव वयासी-इदहा. न न मंते  
 सुवव अथगारे वा. वा. अथगारे. अथगारे. पयमइया  
 मयमइमए. अथगारे. अथगारे. अथगारे. अथगारे. अथगारे  
 अथगारे. अथगारे. अथगारे. अथगारे. अथगारे. अथगारे  
 अथगारे. अथगारे. अथगारे. अथगारे. अथगारे. अथगारे

मामाधिकादिकं स्वरूप या जानकार हुआ और  
 सने वर्धमान थे। यमजह स्थविरोंको चन्दन,  
 मन परके इस प्रकार पाहा—कि हे भगवन्तो !  
 मुने जो पद पाहे हैं उन्हें पूर्यमें न जाननेसे,  
 हल न सुननेसे, इसके साथ सम्बन्ध रखने-  
 ाला बोधि लाभ न प्राप्त होनेसे या मुझमें  
 वषं विचार करनेकी बुद्धि न होनेसे, इस विषय  
 को प्यारेवार बोध न रहनेसे, उन पदोंको मैंने  
 वषं नहीं देखा था और, न सुना था इससे वे पद  
 मरी स्मृतिमें न आनेके कारण उन्हें विशिष्ट तथा  
 न जान सकने से, गुरुने उन्हें विशेषता पूर्वक न  
 कथन करनेसे, वे पद विपक्षसे अपृथग् भूत  
 होनेसे, गुरुने उन्हें बड़े ग्रन्थोंसे सत्तेपमें उद्धृत  
 न किया होनेसे और इसी हेतु वे पद अनव-  
 धारित रहनेसे आपसे कथन किये गये इस अर्थ  
 को मैंने न सहहा था । उस अर्थ पर मुझे वि-  
 धास या रुचि भी न थी । परन्तु हे भगवन्तो !  
 अब मैंने आपसे इन पदोंको जाना है, सुना  
 है और यावत् अवधारित किया है, इससे मुझे  
 आपके कथन किये अर्थमें श्रद्धा, विश्वास और  
 रुचि हुई है एवं आप जो कहने हैं वह उसी  
 प्रकार है ।

इस प्रकार एक ऋजु ब्राह्म संप्रदाय के  
 याणी सुनकर वर्धमानके वक्रजड़  
 कहा कि हे आर्य ! हम जो कहते हैं उसमें  
 करो, विश्वास करो और रुचि रखो।  
 बाद उस ऋजुब्राह्म कालास्ययेशिक मुनि  
 स्थविरोंसे कहा कि हे भगवन्तो ! मेरी ऐसी  
 वृत्ति है कि अपना चातुर्याम धर्म छोड़कर  
 आपके प्रतिक्रमण सहित पंचयाम धर्मको भंगी-  
 कार करके विचरूँ । इसके उत्तरमें स्थविरोंने  
 विशेष कोमलता पूर्वक कहा कि हे देवप्रिय !  
 जैसे सुख पैदा हो वैसे करो और वैसे करनेमें  
 विलम्ब न करो । (भगवती सूत्र अजीम० पृ०  
 १३४-१३५) ।

इस उल्लेखमें वर्धमानके वक्रजड़ शिष्योंसे  
 ऋजुब्राह्म पार्श्वपत्यने सर्वथा न जाना हुआ  
 जाना, न सुना हुआ सुना और वैसे करके  
 उसने अपना पूर्वापर से चला आता चातुर्याम  
 मार्ग छोड़ और वक्रजड़ोंका संप्रतिक्रमण पंच-  
 याम मार्ग स्वीकार कर अपना कल्याण सिद्ध  
 किया । यह बात भी भंगी पूर्वांक कल्याण को  
 पुष्ट करने मान्य दर्श है । इसके उपरान्त

मार्ग बदलने के सम्बन्धमें धर्ममान धर्मग्रन्थों  
 में पार्श्वपत्तियोंसे लगने लगे अन्य भी ऐसे अनेक  
 ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जो मेरी मान्यताका  
 समर्थन करते हैं। इस विषयमें मैं पार्श्वनाथ और  
 वर्धमान, नामक एक सविस्तर निबन्ध लिखना  
 चाहता हूँ। अतएव यहाँपर इस विषयका  
 विस्तार करके प्रस्तुत निबन्धका कलेघर पढ़ाना  
 न्याय है। अस्तु ऊपर बतलाई हुई मेरी तमाम  
 रीतोंसे इस बातको स्पष्टतया सूचित करती हैं  
 कि वर्धमानके समयमें पार्श्वनाथ की पाड़ी  
 कमला गई थी, वह उत्तम त्यागके जलसे  
 संचित न होती थी, किन्तु उसे सुखशीलताका  
 कैपाकके रस जैसा आपातमधुर पानी मिल-  
 ता रहता था। पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये  
 कि मैं श्वेताम्बरता और दिगम्बरताके मूलकी  
 घोष कर रहा हूँ। मुझे अपने यथामतिजन्य  
 मननके बाद पार्श्वपत्तियोंकी सुखशीलता में ही  
 उसका मूल समाया हुआ मालूम देता है।  
 वर्धमानके आसपास के पार्श्वनाथके सन्तानीयों  
 की सुखशीलता में मुझे कुछ भी मीनमेख मालूम  
 नहीं देती, एवं उनकी ऋजुता और सरलता-  
 प्राज्ञतामें भी मेरा कोई मतभेद नहीं है। इसमें



इस प्रकार एक ऋजु ब्राह्म संप्रदाय के मुनिकों  
 बाणी सुनकर वर्धमानके वक्त्रजड़ स्थविरोंने उसे  
 कहा कि हे आर्य ! हम जो कहते हैं उसमें भ्रम  
 करो, विश्वास करो और रुचि रखो। इसके  
 बाद उस ऋजुब्राह्म कालास्यवेशिक मुनिने  
 स्थविरोंसे कहा कि हे भगवन्तो ! मेरी ऐसी  
 वृत्ति है कि अपना चातुर्याम धर्म छोड़कर  
 आपके प्रतिक्रमण सहित पंचयाम धर्मको भंगी-  
 कार करके बिचरूँ । इसके उत्तरमें स्थविरोंने  
 विशेष कोमलता पूर्वक कहा कि हे देवप्रिय !  
 जैसे मुख पैदा हो वैसे करो और वैसा करनेमें  
 विलम्ब न करो । (भगवती सूत्र अजीम० पृ०  
 १३४-१३५) ।

इस उल्लेखमें वर्धमानके वक्त्रजड़ शिष्यों  
 ऋजुब्राह्म पार्श्वोपत्यने सर्वथा न जाना हुआ  
 जाना, न सुना हुआ सुना और वैसा कर  
 उसने अपना पूर्यापर से चला आता चातुर्या  
 मार्ग छोड़ और वक्त्रजड़ोंका सप्रतिक्रमण पंच-  
 याम मार्ग व्योकार कर अपना कल्याण सि-  
 क्षित । यह बात श्री मेरी प्रियोंका कल्याण क  
 पुत्र करती मानूँ ।



2000 2001 2002 2003

1 2 3 4

5







अपने आपलगाए को इतना कठिन काम था कि कि  
 कठिनता की कल्पना को भी आपुनिक प्रयत्न  
 नहीं पहुँच सकता । इसी कठिनाई के प्रसार  
 इस समय के नमगुरुधर्मि पुनः स्वामी का  
 नाम देना और इससे निश्चय के साथ  
 ही भगवान् कहने लगा । इस एक जो नो निश्चय  
 करने व न गुरुगुरुधर्म का मानना ही कि  
 भगवान् कहने व । इस प्रकार एक बड़ा गुरुनि  
 का नाम स्वामी का वस वसवाटा या गुरु  
 १३ ।

१३ । गुरु का बोधना दिया काम है  
 १४ । गुरु का अन्वेषण आया करता है, ऊँ  
 १५ । गुरु का बोधना आया है गुरु धारण करने है  
 १६ । गुरु की अन्वेषण गुरु स्वामी की गुरु  
 १७ । गुरु की काव्यसाधक निश्चय निश्चय  
 १८ । गुरु का बोधना और बोधना दिया है  
 १९ । गुरु का अन्वेषण अन्वेषण अन्वेषण है  
 २० । गुरु का गुरु गुरु गुरु गुरु गुरु गुरु  
 २१ । गुरु का अन्वेषण अन्वेषण अन्वेषण है  
 २२ । गुरु का अन्वेषण अन्वेषण अन्वेषण है  
 २३ । गुरु का अन्वेषण अन्वेषण अन्वेषण है

































































































पेक्षस्तंभे × × × वड़रामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिण-  
 ण्णदाओ" (स० पृ० ६३) यहाँ पर उपयुक्त किया  
 हुआ चैत्यस्तंभ शब्द भी उसी अर्थको सूचित  
 करता है जो चैत्यका प्राचीन और प्रधान अर्थ  
 है । टीकाकार महाशयने भी यहाँपर उसी  
 मुख्य अर्थका अनुसरण किया है (सुधर्मसभामध्ये  
 पट्टियोजनमानो माणवको नाम चैत्यस्तंभोऽस्ति, तत्र  
 वज्रमयेषु गोलवट्ट वृत्ता वर्तुलाः ये समुद्रका भाजन-  
 विशेषाः तेषु जिनसक्योनि + + + तीर्थकराणां ×  
 अस्त्यानि प्रज्ञप्तानि" (स० पृ० ६४) अर्थात् सुधर्म  
 सभामें एक चैत्यस्तंभ है, उसमें वज्रमय गोला-  
 कार भाजनमें तीर्थकरों की हड्डियां रक्खी हुई  
 पतलाई हैं" टीकाकारने इस स्तंभकी ऊंचाई ६०  
 योजन पतलाई है, पाठकोंको इस तरफ ध्यान  
 देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह देवताई  
 स्तंभ है, मैं तो उसे ६० योजन के बदले ६००००  
 योजन ऊंचा माननेके लिये भी तैयार हूँ ?

(२) "रायाधम्मकहाणु पं छायाणं × × × पेइ-  
 माइ"-स० (पृ० ११६) (३) "उवामगदनातु पं उवा-  
 मगातं × × × पेइमाइ (स० पृ० ११६) (४) × अंत-  
 गदातं × × पेइमाइ"-स० पृ० १२१) (५) "अणु-  
 एतेववाइयातं × पेइमाइ"-स० पृ० १२२) तथा





















## देवद्रव्यवाद ।



मेरा तीसरा मुद्दा देवद्रव्यवाद नामक है, अप मैं उसका व्योरेवार प्रारंभ करता हूँ। चैत्यवादके साथ यह विषय घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है इसी कारण मैंने चैत्यवाद पर प्रथम चर्चा की है और उसके बाद तुरन्त ही इसपर विचार करना उचित समझा है। जो यह मानने हैं कि जहाँ मूर्ति हो वहाँ देवद्रव्य भी अवश्य होना चाहिये, मेरी मान्यतासे उनका यह मन अयुक्त है, तथापि कुछ देरके लिये हम उसे मान भी लेंगे जो जिन कारणोंसे देवद्रव्यकी अविहितता और अर्थाधीन करूपना साधित हो सकती है वे कारण ये हैं—उपरोक्त चैत्यवादकी चर्चासे यह पान हो आप भली प्रकार जान सके हैं कि मूर्तिवाद चैत्यवादके बादका है पाने उसे चैत्यवाद जितना आधीन माननेके लिये हमारे पान पक्ष भी ऐसा मजबूत प्रमाण नहीं है जो आखीर तुरन्त विधि निष्पन्न हो जायतामसक हो। जो जो हम लोग हमारे कुलाचार भी मूर्तिवादको अनादि का गहराने तथा अर्थाधीन भाषित रखलाने





























और रत्नोंके तिगड़े की रचना करनेमें कैसी कुशलताका परिचय दिया है !!! मुझे तो यह एक विलकुल विचित्र बात मालूम होती है कि उपदेशक भी किलेमें घुसकर उपदेश देते होंगे या उन्हें किसीके दरसे किलेमें बैठकर उपदेश देना पड़ना होगा ? इस प्रकार उपदेश और किलोंके बीच किसी तरहका सम्बन्ध न होने पर भी उन्होंने उपदेशके समय जो तीन किले, किमनीएक बापिकायें-बायाड़ियां एवं कितनेक नाटक भी बना दिये हैं और खुद भगवान महा-धीरका भी अनुमुख्य बना दिया है, उनकी इस शिल्पकलाके सामने विश्वकर्माको भी शर्मना पड़ा होगा । भगवान महार्थार सूर्यज्ञ थे इस बातको हम सब मानते हैं, इससे हम उनकी सूर्यज्ञताका लाभ लेकर अपने मान हुये और प्रमाण पुरुषोंके नामोल्लेख उनके मुखसे बनायदी नीतिमें कराये यह कितना अनुचित कार्य है और भगवान महार्थारकी आज्ञातना करनेवाला है हम बातका विचार विचारक व्यर्थ कर सकते हैं।

यह कहें कि उस महापुरुषने अपने पवित्र मुखमें मेरे पिताका जीवन चरित्र कथन किया था । आप कहें कि महार्थारने भी हमारे संगे













































2. 1

2. 1

2. 1

2. 1

2. 1

शान्त करनेके लिये मैंने इस प्रकार  
 परिस्थिति का ऐतिहासिक चित्र आपके  
 रक्खा है। जो आप सब इस विषयमें  
 करके पढ़ोंके साथ परामर्श कर हमारे  
 तथा सामाजिक उन्नतिके रोधक या बाधक हो रहे हैं वे  
 उपमे धँसे न रहें इस प्रकारका योग्य  
 करेंगे तो मैं इस अपने प्रयासको सफल  
 समझूँगा। अब राष्ट्रसेवाके समान  
 हम भाषकों पर ही आपड़ी है। हमने  
 या स्वामिजीओंके विश्वासपर ही  
 समस्त निभाया, परन्तु इससे हमारा  
 उत्थार न हुआ, न होता है और अब होगा भी

